ISSN: 2393-8900 IMPACT FACTOR : 1.9152(UIF) VOLUME - 4 | ISSUE - 12 | AUGUST - 2018

HISTORICITY RESEARCH JOURNAL

राहुल सांकृत्यायन का व्यक्तित्त्व एवं वैचारिकता : बौद्ध धर्म के विशेष सन्दर्भ में

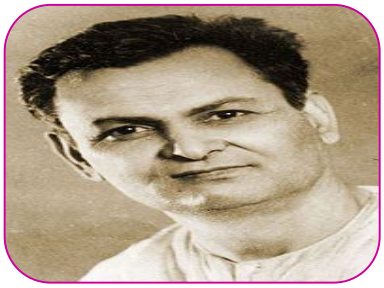

प्रविण बोरकर

सहायक प्राध्यापक आर. के. तलरेजा कॉलेज, उल्हासनगर, मुम्बई विश्वविद्यालय.

प्रस्तावना :

डॉ. अंबेडकर के पूर्व जिन महानुभावोंने बौद्ध धर्म के बारे में लेखन किया तथा बौद्ध चिंतन को एक नया आयाम दिया, उनमें अनागारिक धम्मपाल, भदन्त आनंद कौसल्यायन, भिक्षु जगदीश कश्यप, राहुल सांकृत्यायन के नाम प्रमुख रूप से सामने आते है । राहुल सांकृत्यायन यह नाम बौद्ध जगत में जाना पहचाना है । उन्होंने बौद्ध धर्म पर चिन्तन के साथ प्रचुर मात्रा में लेखन भी किया है। यही नहीं उन्होंने पाली भाषा के अनेक ग्रंथो को हिन्दी में अनुवादित भी किया है। राहुलजीके लेखन तथा वैचारिकता का दृष्टीकोण बौद्धवादी एवं मार्क्सवादी है । उनकी पहचान भी इसी रूप में समाज में प्रस्थापित है, और इतिहास में भी दर्ज है। राहुलजी के जीवन में जैसे अनेक उतार-चढाव आये, वैसेही उनके वैचारिकता में भी अनेक बदलाव दिखाई पड़ते है ।सनातनी ब्राह्मण परिवार में जन्मे राहुलजी प्रारंभ में वैष्णव साधु बने बादमे आर्यसमाजी बने उसके बाद वे बौद्ध भिक्षु बने आखिर में वह मार्क्सवादी बने, मार्क्सवादी बनना उनका अंतिम पड़ाव था । लेकिन मार्क्सवाद तक पहुचाने में बौद्ध धर्मसे उन्हें मदत मिली यह स्वीकार करना पड़ेगा ।

राहुलजी बौद्ध धर्म व तत्वज्ञान के पंडित थे, उन्होंने बौद्ध तत्त्वज्ञ तथा बौद्ध धर्म के भाष्यकारों पर विशेष रूप से लिखा है । बौद्ध धर्म का तत्वज्ञान कैसे आगे बढ़ता गया इसका जो समालोचन उन्होंने किया है वो अपनेआप में महत्त्वपूर्ण है । जिस समय हिन्दी भाषा में बौद्ध साहित्य की कमी थी, उस समय राहुलजीने स्वयं के लेखन के माध्यम से उस कमी को पूरा करने का प्रयत्न किया । इसी कारणवश उनका नाम आजभी बौद्ध साहित्य जगत में बड़े सन्मान से लिया जाता है । उनके बौद्ध धर्म पर लिखे हुए ग्रंथोको कई वर्ष बीते है, फिरभी आज भी उनकी लोकप्रियता एवं उनकी मांग बनी रहती है, यह बात उनके लिखे हुए ग्रंथो के महत्त्व को दर्शाती है । संपूर्ण देश में जहाँ पर भी पाली भाषा तथा बौद्ध धर्म के संबंध में पाठ्यक्रम चलाये जाते है वहाँ पर राहुलजी के ग्रंथो का सन्दर्भ के रूपमें उपयोग किया जाता है । राहुलजीने बौद्ध धर्म, तत्त्वज्ञान एवं संस्कृति के संबंध में लेखन कर बौद्ध धर्म की जो सेवा की है वह अविस्मणीय है । उनके बौद्ध धर्म संबंधी लेखन, चिंतन तथा कार्यों पर आजतक अनेक शोधकार्य हुए है, राहुलजी तथा उनका लेखन, चिंतन वर्तमान में भी चर्चाका, शोधका विषय है, आज भी युवा शोधकर्ताओं को उनके जीवन व कार्य प्रेरणा मिलती है, उनका लेखन सामनेवाले को सोचने पे मजबूर कर देता है, पाठकों को अपने और आकर्षित करने में वे आज भी सफल है । इसी कारण वे आज भी प्रासंगिक बने हुए है।

राहुलजीने लगभग ५० हजार पन्नो का साहित्य निर्माण किया है ।[१] उनका सर्वाधिक लेखन बौद्ध धर्म के संबंध में है 'बुद्धचर्या' (१९३०), 'धम्मपद' (१९३३), 'मज्झिम निकाय' (१९३३), 'विनय पिटक' (१९३४), 'दीघ निकाय' (१९३५), 'तिब्बत में बौद्ध धर्म' (१९३५), 'बौद्ध दर्शन' (१९४२), 'बौद्ध संस्कृति' (१९५२) 'महामानव बुद्ध' (१९५६) 'पाली साहित्य का इतिहास', 'पाली काव्यधारा' यह उनके महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है । बौद्ध धर्म और इतिहाससे प्रेरित 'वोल्गा से गंगा', 'दर्शन-दिग्दर्शन', 'अतीत से वर्तमान' इन ग्रंथों के साथ

श्रीलंका, तिब्बत, जापान एवं चीन यात्राके वृत्तान्त भी महत्त्वपूर्ण है । उनके 'सिंह सेनापती', 'जय यौधेय' व 'विस्मृत यात्री' यह उपन्यास भी बौद्ध धर्म से प्रभावित है। 'मध्य एसिया का इतिहास' खंड १ भी मध्य एशिया में बौद्ध धर्म के जानकारी हेतु महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है इन सारे ग्रंथों के माध्यम से राहुलजीका बौद्ध धर्म के प्रति भूमिका, दृष्टीकोण व निष्ठा का परिचय होता है ।

राहुलजी को बौद्ध धर्म की प्रारंभिक जानकारी भिक्खु बोधानन्द द्वारा मिली थी ।[२] बौद्ध धर्म की जानकारी पाकर उनके मन में बौद्ध धर्म के प्रति जिज्ञासा जाग उठी । इस वक्त राहुलजी आर्यसमाजी थे और उनपर स्वामी दयानन्द सरस्वती और उनके आर्यसमाज का प्रभाव था, वे बुद्ध को भी दयानन्द सरस्वती के समान वैदिक धर्मप्रचारक ऋषि समजते थे, बादमे बौद्ध धर्मके सूक्ष्म अध्ययन के कारण उनका यह दृष्टीकोण बदला । बौद्ध धर्म की सुरुवाती जानकारी उन्हें बौद्ध धर्म से लगाव हो गया था, इसलिए १९२२ के गया में होनेवाले अखिल भारतीय कांग्रेस के अधिवेशन के पूर्व उन्होंने बिहार प्रान्तिक कांग्रेस कमिटी के सामने 'बौद्धगया मंदिर' बौद्धोका है और उन्हें वो मिलना चाहिए, ऐसा प्रस्ताव रखा था ।[३] वादविवाद के बाद यह प्रस्ताव स्वीकार किया गया, लेकिन कांग्रेस के अंतर्गत विवाद के चलते यह प्रस्ताव अखिल भारतीय अधिवेशन में नहीं आ सका। लेकिन इस कालमें बौद्ध भिक्षुओं के साथ काम करने का जो मौका उन्हें मिला इस वजहसे वे बौद्ध धर्म के अधिक करीब आये ।

बौद्ध धर्म के संपर्क में आने के बाद के बाद राहुलजी के मन में जो हलचल पैदा हुई थी वे उन्हें श्रीलंका तक ले गई ।उस समय श्रीलंका के विद्यालंकार विहार में संस्कृत पढ़ानेवाले शिक्षक की जरुरत थी और राहुलजी को दो वक्त के खाने का तथा पढाई का इंतजाम चाहिए था, सारनाथ के भिक्षु श्रीनिवास ने उन्हें विद्यालंकार जाने को कहाँ, १६ मई १९२७ से १ दिसम्बर १९२८ तक राहुलजी श्रीलंका के विद्यालंकार विहार में रहे । इस दौरान उन्होंने संस्कृत का अध्यापन किया तथा स्वयं भी पाली भाषा, त्रिपिटक और अन्य बौद्ध ग्रंथों का अध्ययन किया । इस अध्ययन के कारण भारतीय संस्कृति का उनका झान अधिक प्रगत हुआ, उनमें वैज्ञानिक दृष्टीकोन तयार हुआ, उनके जन्मजात सनातनी तथा आर्यसमाजी विचार पीछे छूटते गये ।लेकिन फिरभी उन्हें ईश्वरपर विश्वास था, प्रारंभ में उन्होंने ईश्वर और बुद्ध का एकसाथ विचार किया, लेकिन यह समीकरण कुछ जमा नहीं । वे लिखते है, " ईश्वर और बुद्ध साथ नहीं रह सकते, यह साफ हो गया, और यह भी स्पष्ट मालूम होने लगा, कि ईश्वर सिर्फ काल्पनिक चीज है, बुद्ध यथार्थवक्ता है ।" [४] राहुलजी के विचारों में आया यह क्रन्तिकारी परिवर्तन था, इस परिवर्तन की छाप उनके साहित्य में दिखाई देती है ।

श्रीलंका में वास्तव्य से राहुलजी में बौद्ध धर्म को जानने के प्रति अधिक जिज्ञासा निर्माण हुई थी । उस जिज्ञासा को पूर्ण करने हेतु राहुलजीने तिब्बत जाने का निश्चय किया, बौद्ध तत्त्वज्ञान व बौद्ध धर्म के इतिहासकी अच्छी जानकारी तिब्बत में मिलेगी इसका उन्हें भरोसा था ।[५] बारहवे शतक में बख्तियार खिलजी के आक्रमण के कारण नालंदा एवं विक्रमशिला विश्वविद्यालयों की अपरिमित हानि हुई थी, ऐसी परिस्थिति में यहाँ के बौद्ध भिक्षुओं ने अनेक मौल्यवान ग्रंथों को साथ लेकर नेपाल वखासकर तिब्बत में पलायन किया था, यह ग्रंथ तिब्बतके विहारों में धुल खाते पड़े थे, इन ग्रंथों को खोजकर उन्हें वापस भारत में लाना भी उनका एक उद्देश था ।राहुलजी के भारत वापस लौटने के पहले विद्यालंकार विहार ने उन्हें पाली भाषा व बौद्ध ग्रंथों केगंभीर अध्ययन हेतु 'त्रिपिटकाचार्य' पदवी से सन्मानित किया ।[६]

राहुलजीने अपने उद्देश पूर्ति के लिए तिब्बत की चारयात्राएँ की, उन्होंने १९२९ में पहली यात्रा की, १९३४ में दूसरी, १९३६ में तीसरी और १९३८ में उन्होंने चौथी यात्रा की ।उनकी यह चारों यात्राएँ अति विशेष है, उस समय जहाँ तिब्बत में दुसरे प्रदेश के लोगों को जाने की अनुमति नहीं थी, वहाँ जाने के लिए विशेष सुविधा नहीं थी उस समय में राहुलजी ने यह जज्बा दिखाकर तिब्बत में जाने का साहस किया यह उनके कार्यों के प्रति उनके समर्पण भाव को दर्शाता है । तिब्बत में जाकर कभी भूखा रहकर कभी पैसे की कमी को सहकर, जीवनयापन में अनेक यातनाओं कोझेलते हुए उन्होंने अनेको विहारों की खाक छानी, वहाँ के लामाओं को स्वयंके तिब्बत आने का उद्देश समझाकर उनसे मदत माँगी, कभी दुर्लभ ग्रंथों के फोटो निकालकर तो कभी उनकी कापी कर वे भारत ले आये, कभी उन्हें पूरा ग्रंथ ले जाने की भी अनुमति मिली, इस क्रम में उन्होंने कभी ठंडी का सामना किया तो कभी डाकुओं का, लेकिन वे कभी अपने मार्ग से विचलित नहीं हुए । आखिरकार वे जिन ग्रंथों को खोजने तिब्बत गये थे उन्हें पाने में वे सफल रहे ।उनमें धर्मकीर्ति, प्रज्ञाकरगुप्त, कर्णकगोमी, असंग, वसुबंधू तथा सरहपा के ग्रंथ प्रमुख थे। सुप्रसिद्ध कंजूर व तंजुरनामक ग्रंथ भी उन्हें मिले थे, इन ग्रंथों को पाकर उन्हे अत्यानंद हुआ था ।[७] धर्मकीर्ति लिखित 'प्रमाणवार्तिक' ग्रंथ मिलना उनके लिए विशेष बात थी, और यह उनका अत्यंत महत्त्वपूर्ण खोजकार्य था ।[८] इस खोजकार्य से रशियन बौद्ध विद्वान श्चेर्बात्स्की आनंदित हुए थे, और उन्होने काशीप्रसाद जायस्वाल को इस संबंध एक अंतर्राष्ट्रीय परिषद के आयोजन का सुझाव दिया था ।[९]

तिब्बत की पहली यात्रा से वापस आकर राहुलजी १९३० में श्रीलंका गये, बौद्ध धर्म के प्रभाव के कारण वहाँ जाकर उन्होंने बौद्ध धर्म की दिक्षा लिया और वे बौद्ध भिक्षु बने ।[१०] उन्हें 'राहुल सांकृत्यायन' यह नया नाम मिला । उनका जन्मनाम 'केदारनाथ पांडे' था, वैष्णव

साधु बने तो उन्होंने 'रामउदार' नाम धारण किया था, और बौद्ध बनने के बाद वे राहुल सांकृत्यायन कहलाये, इसी नाम से वे प्रसिद्ध हुए। उनका यह नाम उनकी बौद्ध संस्कृति से लगाव का द्योतक है। यह उनका आखरी नामांतरण था। इसके बाद वे मार्क्सवादी बने लेकिन नाम राहुल सांकृत्यायनही रहा। राहुलजीका बौद्ध भिक्षु बन जाना, यह घटना महत्त्वपूर्ण माननी चाहिए। आखिर राहुलजी बौद्ध क्यों बने ? वे बौद्ध न बनकर भी बौद्ध साहित्य का निर्माण कर सकते थे, बौद्ध बने बिनाही वे तिब्बत की यात्राएँ कर दुर्लभ बौद्ध साहित्य का पुनरुद्धार करसकते थे। फिरभी वे बौद्ध बने क्योंकि पहली तिब्बत यात्रा में उन्हें यह बात समझ आयी की, तिब्बत यह एक बौद्ध प्राबल्य एवं बौद्ध संस्कृति वाला देश है, अपितु ग्रंथप्राप्ति हेतु इस देश के लोगों की मदत चाहिए तो बौद्ध धर्म का चोला फायदेमंद साबित हो सकता है,बौद्ध तत्त्वज्ञान के अध्ययन के बाद बौद्धों का तर्क स्वातंत्र्य उन्हें लुभाया था, ईश्वरवाद तथा तमाम कर्मकाण्डों से उन्हें छुट्टी मिली थी, बौद्ध धर्म 'धर्म' होकर भी उसमे ईश्वर का कोई स्थान नहीं था, अनित्यवाद, प्रतीत्यसमुत्पाद, शून्यवाद जैसे सिद्धान्तो ने उन्हें झकझोर दिया था, गणराज्य शासन की कल्पना भी उन्हें बौद्ध साहित्य के पठन से मिली थी, राहुलजी के वैज्ञानिक धारणाओं से भी बौद्ध धर्म मेल खाता था, इसलिए उन्होंने बौद्ध धर्म का स्वीकार किया था। ऐसा मेरा अपना अनुमान है, जो उनका साहित्य पढने के बाद मैंने निकाला है।सुविख्यात इतिहासकार रामशरण शर्मा लिखते है, "The new religion made such a deep impact on him that even when he joined the Communist Party in 1939 he occasionally justified communism on the basis of the teachings of Gautama Buddha." [११]

भदन्त आनंद कौसल्यायनजी के साथ राहुलजीका विशेष स्नेह रहा, आनंदजी राहुलजी के गुरुबंधु तथा परममित्र थे। १९३२ में आनंदजी को महाबोधि सभाद्वारा बौद्ध धर्म के प्रचार हेतु यूरोप भेजा जानेवाला था, राहुलजी भी उनके साथ चल दिये, लेकिन वह धर्मप्रचारक के रूप में नहींगये थे। [१२] भदन्त अनागारिक धम्मपाल श्रीलंका से भारत आकर बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार का कार्य कर रहे थे, राहुलजी इस कार्य को आगे बढ़ाये ऐसा वे चाहते थे, लेकिन राहुलजी का अब धर्म विशेष लगाव नहीं रहा था। उन्ही के शब्दों में, "बौद्धधर्म के साथ भी मेरा कच्चे धागे का ही सम्बन्ध था।" [१३] राहुलजीने १९३० में बौद्ध धर्म का स्वीकार किया था और १९३२ में उन्हें बौद्ध धर्म कच्चे धागे के समान लग रहा था, इसका अर्थ केवल दो वर्षो तक ही राहुलजी को धर्म से लगाव रहा, और धीरेधीरे राहुलजी धर्म से दूर होते गये। मार्क्सवाद के प्रभाव के कारण राहुलजी को धर्म में विशेष आस्था नहीं रही थी, और १९३९ के आते-आते उन्होंने बौद्ध धर्म को भी त्याग दिया। [१४] इसके बाद वे पूरी तरह से मार्क्सवादी बने, १९३९ में जब बिहार कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना हुई तो राहुलजी इस पार्टी के संस्थापक सदस्य बने।राहुलजी के विचारों में आया यह बदलाव उन्हें पक्का मार्क्सवादी बना गया।

मार्क्सवादी बनने के बाद राहुलजीने कठोर शब्दों में धर्म की निंदा की है, धर्म को उन्होंने समाज में झगडे लगानेवाला कहाँ है, जब तक धर्म का अस्तित्त्व है, तब तक मानवी जीवन में शांति स्थापित नहीं हो सकती ऐसा उनका मानना है। [१५] मार्क्सवादी दृष्टीकोण से राहुलजी द्वारा की गई धर्म चिकित्सा नकारार्थी है, अन्य धर्मो के साथ वे बौद्ध धर्म की कमियों को भी गिनाते है, लेकिन फिर भी बौद्ध धर्म के प्रति उनका झुकाव बार बार दिखाई पड़ता है। मार्क्सवादी बनने के बाद भी राहुलजीने बौद्ध ग्रंथों का निर्माण जारी रखा, १९५९ से १९६१ तक वे श्रीलंका के विद्यालंकार विश्वविद्यालय में प्रोफेसर भी रहे। लेकिन फिर भी १९३९ के बाद उन्हें बौद्ध धर्म का अनुयायी कहना साहसपूर्ण होगा, गुणाकर मुले के शब्दों में, "बौद्ध धर्म का अनुयायी और बौद्ध संस्कृति का आराधक- इन दो स्थितियों में अन्तर है।१९३९ के बाद राहुल अपने आप को 'बौद्ध धर्म का अनुयायी' कहीं नहीं कहते।" [१६] मार्क्सवादी बनने के बाद भी राहुलजी बौद्ध धर्म और बुद्ध के अनन्य प्रशंशक थे, लेकिन फिर भी १९३९ के बाद उन्हें बौद्ध अनुयायी नहीं कहा जा सकता। राहुलजी को नास्तिक और मार्क्सवादी कहना ज्यादा यथार्थपूर्ण होगा।

राहुलजी ने अपने संपूर्ण जीवनकाल में बौद्ध धर्म के प्रचारप्रसार का कार्य नहीं किया, और न ही उनकी यह इच्छा थी, कोई भी धर्म उन्हें शोषक नजर आता था, धर्म को वे समस्या का मूल मानते थे। इसलिए उन्हें मार्क्सवाद की धर्मविरहित विचारधारा ज्यादा अच्छी लगी। ऐसा मानते हुए भी जब डॉ. अम्बेडकर ने १४ अक्टूबर १९५६ को महाराष्ट्र के शहर नागपुरमें अपने लाखों अनुयायियों के साथ बौद्ध धर्म की दिक्षा ली थी तब, "डाक्टर अम्बेडकर ने भारत में पुन बौद्ध धर्म का ऐसा मजबूत स्तम्भ गाड़ दिया है, जिसे भारत भूमि से अब कोई उखाड़ नहीं सकेगा।" ऐसी प्रतिक्रिया उन्होने व्यक्त की थी। [१७] मार्क्सवादी होने के बाद बौद्ध धर्म के अनुयायी न होते हुए भीवे बौद्ध संस्कृति के आराधक थे, जिस प्रकार हेगेल का तत्त्वज्ञान युरोप मी मार्क्सवाद समझने में सहायक है, उसी प्रकार भारत में बौद्ध धर्म मार्क्सवाद को समझने में सहायक है ऐसा उनका मानना था, इसी वजह से शायद उन्होंने डॉ. अम्बेडकर के कदम का स्वागत किया हो। जो भी हो उन्हें बौद्ध धर्म से हमेशा लगाव रहा, इसलिए उनके कम्युनिस्ट मित्र उन्हें 'पित साम्यवादी' भी कहते थे। [१८]

राहुलजी अनोखे व्यक्ति थे, प्रसंगानुरूप उनके विचार बदलते रहे, उन्होंने जो भी चोला पहना हो लेकिन कभी भी किसी भी विचारधारा से उन्होंने स्वयं को कभी बांधकर नहीं रखा, जो अच्छा लगा उसका स्वीकार किया, जो स्वीकार्य नहीं लगा उसे त्याग दिया। इसी

का फल है की उन्होंने सनातनी ब्राह्मण से मार्क्सवाद तक का जो सफ़र पूरा किया। इसमें बौद्ध विचार का बहुत बढ़ा योगदान है, अतः उनके जीवनपर हुए बौद्ध धर्म के प्रभाव को नकारा नहीं जा सकता। 'बेड़े की तरह पार उतरने के लिए मैंने विचारों को स्वीकार किया, न कि सिर पर उठाये-उठाये फिरने के लिए।' इस बुद्ध वचन का हमेशा उन्होंने पालन किया, और यह वचन उनके जीवन का आदर्श भी बने।

सन्दर्भ

१. माचवे प्रभाकर, 'भारतीय साहित्याचे निर्माते राहुल सांकृत्यायन', साहित्य अकादेमी, नवी दिल्ली, २००९, पृ. २२
२. Ahir D. C. The Pioneers of Buddhist Revival in India, Sri Satguru Publication, Delhi, 1989, p. 70
३. सांकृत्यायन राहुल, 'मेरी जीवन-यात्रा', भाग-१, दुसरी आवृत्ति राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, २०१०, पृ. २६७
४. सांकृत्यायन राहुल, 'मेरी जीवन-यात्रा', भाग-२, दुसरी आवृत्ति राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, २०१०, पृ. १९
५. वही, पृ. २३
६. वही, पृ. २६
७. वही, पृ. १७६
८. वही, पृ. २४१
९. Jayaswal K. P. 'The Discoverer', राहुल स्मृति, संपा. रामशरण शर्मा व पुष्पमाला जैन, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लि. नई दिल्ली, १९८८, पृ. ४२१
१०. सांकृत्यायन, उपरोक्त, पृ. ७७
११. Sharma R. S., 'Rahul Sankrityayan and Social Chang' Rahul Sankrityayana Birth Centenary Celebration, Indian History Congress Symposia Papers: 7-8, Mysore: 1993, p. 6
१२. कौसल्यायन भदन्त आनंद, 'जो न भुल सका', बुद्ध भूमि प्रकाशन, नागपुर, १९९४, पृ. ७७
१३. सांकृत्यायन, उपरोक्त, पृ. १०५
१४. सांकृत्यायन, उपरोक्त, पृ. ३१९
१५. सांकृत्यायन राहुल, 'साम्यवाद ही क्यों?', किताब महल, इलाहाबाद, २०११ ,पृ. ५८
१६. मुले गुणाकर, 'राहुल चिंतन', राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, नई दिल्ली, १९९४, पृ. ६८
१७. कौसल्यायन भदन्त आनंद, 'वज्रादपि कठोराणि', राहुल सांकृत्यायन, जीवनी और संस्मरण (संपा. कमला सांकृत्यायन) खण्ड दो, जिल्द २, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण, २०१४, पृ. ५५९
१८. मुले, उपरोक्त, पृ. ६६